कारक प्रकरण (सिद्धान्त कौमुदी) करण

स्वतन्त्रः कर्ता क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षतोऽर्थः कर्ता स्यात्।

अर्थ—क्रिया करने में जिसकी स्वतन्त्रता मानी जाए वही कर्ता कारक कहलाता है।

व्याख्या—क्रिया कारण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कारकत्व के लिए आवश्यक है। अतः क्रिया की उत्पत्ति में जिस कारक की जितनी प्रधानता रहती है उतना ही वह कारक स्वतंत्र बतलाया जाता है। अतः क्रिया की उत्पत्ति में जो स्वतन्त्र अर्थात् प्रधान हो उसे ही कर्ता कहेंगे। वस्तुतः क्रिया से स्वतन्त्र या निरपेक्ष कोई कारक नहीं कहला सकता है। अतः एव भाष्य में स्वातन्त्र्य का अर्थ प्राधान्येन लिया गया है। क्रियाजनन में कर्ता कारक प्रधान इसीलिए कहा जाता है क्योंकि कारक के अनुसार ही किसी क्रिया की उत्पत्ति होती है।

वस्तुतः सूत्रार्थ में अक्षरशः 'कर्ता' को स्वतन्त्र इसलिए कह सकते हैं क्योंकि यह क्रिया की उत्पत्ति में किसी की अपेक्षा नहीं करता। विवक्षा तथा षक्ति के अनुसार कर्ता जो क्रिया करेगा उसमें कारक हस्तक्षेप नहीं करेगा बल्कि उसी की पुष्टि करेगा यदि ग्राम को कर्ता मान लिया जाए तो प्रसंगानुसार वह कोई व्यापार या क्रिया की उत्पत्ति करने में समर्थ हो सकता है। यदि 'गमन' अभीष्ट है तो काल पुरुष वचनानुरूप तुरन्त 'रामः गच्छति' आदि वाक्यार्थ उपस्थित हो जाएगा। अब क्रिया की उत्पत्ति होते ही ईप्सितमादी अन्य अर्थों के रहने पर कर्मादिकारकों की उत्पत्ति होती जाएगी।

लेकिन यदि 'स्थाली पचति' ऐसा प्रयोग करें तो क्या 'स्थाली' पद क़र्ता के रूप में रहने पर भी क्रियाजनन में स्वतन्त्रता मानी जाएगी? हा। अतः क्रिया की सिद्धि में स्वतन्त्र रूप से विविक्षित ऐसा अर्थ लिया गया तो वस्तुतः केवल स्वतन्त्र या प्रधान ही कारक कर्ता नहीं हो, अपितु स्वतन्त्र या प्रधान वत् विवक्षित भी कारक कर्ता हो सकता है। वस्तुतः शक्त्वानुसार स्थाली पद में करण अर्थ में तृतीया विभक्ति होनी चाहिए थी क्योंकि पाक क्रिया में वह साधकतम होता है फिर भी यदि अर्थ ऐसा लिया जाए कि 'स्थाली' में पाक कर्ता की सहायता के बिना सुविधा से पाक हो रहा है मानो स्थली पाक क्रिया में स्वतंत्र है तो स्थाली पदकर्ता के रूप में क्रिया की सिद्धि में स्वतंत्र रूप से विवक्षित होता है। वस्तुतः कारक वक्ता की बोलने की इच्छा पर बहुत कुछ निर्भर करता है। पुनः किसी धातु के अर्थ क्रिया विशेष मात्र का आश्रय होना 'कर्ता' का स्वातन्त्र्य कहलाता है।

'स्वतन्त्रः कर्ता' सूत्र का प्रयोजन इसीलिए होता है कि करण कारक के प्रारम्भ के पश्चात् कर्तृकरणयोस्तृतीया सूत्र में सर्वप्रथम 'कर्ता' शब्द का उपादान होता है। प्रथमा विभक्ति के प्रसंग में प्रायः इसकी आवश्यकता नहीं थी। प्रथमा विभक्ति तो प्रातिपदिकार्थमात्र में होती है, इसलिए 'कर्ता प्रथम' ऐसा कहना दोषपूर्ण होता क्योंकि यद्यपि सभी कर्ता प्रातिपदिकार्थ होंगे तथापि सभी प्रातिपदिकार्थ का कर्ता होना आवश्यक नहीं है। वस्तुतः 'कर्तरि प्रथमा' ऐसा कहते हैं, वे वृहद् अर्थ में ही 'कर्ता' शब्द का उपादान करते हैं। ऐसी अवस्था में 'कर्ता' में सभी प्रातिपदिकार्थ का समावेश करा दिया जाता है।

1. साधकतमं करणम्

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् 'तमव्' ग्रहणं किम्? गंगायां घोषः।

अर्थः—क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट उपकारक की करण संज्ञा होती है। तमप् का क्या प्रयोजन है? गंगायां घोषः।

व्याख्या—अधिकारलभ्य कारक पद की अनुवृत्ति आने के कारण यह अभिव्यञ्जित होता है कि क्रिया की सिद्धि में जो सबसे अधिक उपकारक = साधकतम होता है उसे 'करण कारक' कहते हैं। करण कारक में प्रकृष्ट

2026.02.11 11:23

उपकारकता अन्य कारकों की दृष्टि से है। यद्यपि यहाँ कर्ता क्रिया की सिद्धि के लिए कारण = साधन का आश्रय लेता है, तथापि वह स्वातन्त्र्य के कारण प्रधान रहता है। वस्तुतः 'करण' गौण होता है क्योंकि करण कर्ता के बिना व्यापारशील नहीं होता। करण संज्ञा होने के कारण ही तृतीया विभक्ति होती है। यथा–कृषकः हलेन कर्षति। यहाँ जोतने की क्रिया में सबसे अधिक उपकारक 'हल' है। अतः करणार्थक 'हल' में तृतीया विभक्ति हुई हलेन।

उक्त सूत्र की अपेक्षा 'साधकं करणम्' ऐसा सूत्र ही कह देते, यहाँ कारक का प्रकरण ही है और कारक और साधक पर्याय है। अतः साधक ग्रहण द्वारा प्रकृष्ट साधक यह जान लिया जाता। फिर पृथक 'तपम्' ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? 'तपम्' ग्रहण से यह उत्पन्न होता है कि कारक प्रकरण में अन्वर्थ संज्ञा के बल से प्राप्त विशेषार्थ नहीं लिया जाता। फलतः 'आधारोऽधिकरणम्' में आधार मात्र की अधिकरण संज्ञा अपेक्षित है, विशेष आधार की नहीं। अत एव गंगायां घोषः में गंगा पद में जो अधिकरण संज्ञा अपेक्षित है वह नहीं होती। तिलेषु तैलम् और दधिनि सर्पिः में जैसे तिल और दधि वैसे ही यहाँ भी 'गंगा मुख्य आधार है और मुख्य आधार का अर्थ रहने पर ही सर्वत्र अधिकरण हुआ है। जब लक्षणा के द्वारा गंगा का मतलब गंगातीर होता है और गंगातीर का आधारत्व सामीप्य के कारण 'गंगाप्रवाह' में उपस्थित होता है तो गंगा पद में जो सप्तमी विभक्ति होती है अधिकरण में वह लाक्षणिक है, लेकिन जब 'गंगा' यह लक्षणा से तीर अर्थ में उपचरित होगा तो लाक्षणिक 'गंगा' पद ही न कि 'तीर'।

वस्तुतः कारक और साधक के साथ-साथ प्रयुक्त होने से ध्वनित भी 'साधक' के अर्थ को प्रबल और स्पष्ट बनाने के लिए 'तपम्' ग्रहण किया गया है। यहाँ अधिकरण का बोध न हो जाए क्योंकि अधिकरण भी कर्तृजन्य क्रिया की सिद्धि या उत्पत्ति में साधक होता है।

2. कर्तृकरणयोस्तृतीया

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण वाणेन हतो बाली।

अर्थ–जब कर्ता अनभिहित अर्थात् अनुक्त होता है (भाव वाच्य और कर्मवाच्य में) तो कर्ता में तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है–

व्याख्या–रामेण बाणेन हतो बाली (राम के बाण के द्वारा बाली मारा गया) यहाँ 'हतः' में कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय हुआ है यहाँ राम अनुक्त कर्ता है। अतः उक्त सूत्र से अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हो जाती है। 'हनन' क्रिया का प्रकृष्ट साधन 'बाण' है। अतः 'साधकतमं करणम्' सूत्र से बाण की करण संज्ञा होकर 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' सूत्र से यहाँ भी तृतीया विभक्ति हो जाती है।

अतिविशेष–उक्त सूत्र के अनुसार 'कर्ता' और 'करण' में तृतीया विभक्ति होती है। कर्ता के साथ अनभिहिते अधिकार सूत्र का योग समझना चाहिए कर्मकारकान्तर्गत अभिधान की परिभाषा के अनुसार 'अनभिहित' का अर्थ वस्तुतः 'अप्रधान' है। किन्तु कर्ता अप्रधान कब होता है? हम देखते हैं कि ऐसा कर्मवाच्य में होता है जब भी कर्म की प्रधानता होती है। कर्तृवाच्य में सर्वथा उसकी प्रधानता रहती है अत एव सिद्ध होता है कि कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी प्रथमा के क्या बाण का कर्तृत्वेन विवक्षा नहीं की जा सकती? हा विवक्षा तो हो सकती है, किन्तु राम पद का प्रयोग नहीं किया जाएगा और इसमें तृतीया की वह नित्यता नहीं होगी जो करण रहने पर थी। ऐसी अवस्था में 'बाणेन हतो बाली' का पूर्ववाक्य होगा 'बाणः हतवान् बालिनम्'। किन्तु करणत्वेन जब इसकी विवक्षा होगी तो 'क्रियते अनेनेति करणम्' की व्युत्पत्ति के अनुसार क्रिया की सिद्धि में साधकतम होने के कारण 'बाण' में तृतीया विभक्ति होती है।

वार्तिक–प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्। प्रकृत्या चारूः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गाऽयः। समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि।

अर्थ–प्रकृति इत्यादि शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। यहाँ प्रकृति, प्राय, स्वभाव, गोत्र, सम (सीधा), विषम (टेढा), द्विद्रोण, पंचक, साहस, दुःख या सुख शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है।

यथा–प्रकृत्या स्वभावेन वा चारूः (स्वभाव का अच्छा) यहाँ सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुई है। यदि स्वभाव से किसी व्यक्ति की सुन्दरता अपेक्षित हो तो करण अर्थ की विवक्षा में तृतीया विभक्ति भी सम्भव है। प्रायेण याज्ञिकः (प्राय याज्ञिक है) यहाँ प्रकृत्यादि गण पठित 'प्रायः' शब्द से सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुई। गोत्रेण गाऽयः (इसका गोत्र गाऽय है या गोत्र से यह गाऽय है) यहाँ उक्त वार्तिक से 'गोत्र' शब्द से तृतीया विभक्ति हुई यहाँ